प्यास और विकास

—अरुण तिवारी

एक प्यास पानी की होती है और एक विकास की। पानी की प्यास जीवन बचाती है और विकास की प्यास सभ्यताओं को अग्रणी बनाती है। जाहिर है कि पानी और विकास दोनों की प्यास का होना जरूरी है। किंतु पानी की प्यास बुझाए बगैर, विकास की प्यास की पूर्ति कभी नहीं हो सकती। यह एक वैज्ञानिक सत्य है। ऐसे में बगैर विनाश, विकास की प्यास रखने वालों के समक्ष यदि आज कोई सबसे बड़ी चुनौती है, तो यह कि इन दो प्यासों के बीच संतुलन कैसे सधे?

सम्पूर्ण विकास कभी एकांगी या परजीवी नहीं होता। वह हमेशा सर्वजीवी, सर्वोदयी, समग्र और कालजयी होता है। आर्थिक, भौतिक, सामुदायिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, लोकतांत्रिक, मानसिक, प्राकृतिक आदि का समावेश उसे समग्र बनाता है। 'सबका साथ : सबका विकास' के नारे में समग्र विकास की यह परिभाषा स्वतः निहित है। नारा चुनौतीपूर्ण है तथा इसे व्यवहार में उतारना और भी चुनौतीपूर्ण। किंतु इस नारे को व्यवहार में उतारे बगैर न विकास का लक्ष्य हासिल किया जा सकता है और न पीने योग्य स्वच्छ–सेहतमंद पानी का। आइए, विकास और प्यास के अंतर्संबंध तथा चुनौतियों पर चिंतन करें ताकि विकास भी हो और पानी भी।

जीवन विकास

आंकड़े खुद चिंतित हैं कि जलचक्र अपना अनुशासन और तारतम्य खो रहा है। पिछले एक दशक के दौरान समुद्रों का तल 6 से 8 इंच बढ़ गया है। परिणामस्वरूप, पृथ्वी पर जीवन विकास की नर्सरी और कार्बन अवशोषण की सर्वोतम प्राकृतिक प्रणाली कहे जाने वाली मूंगा भित्तियों का अस्तित्व खतरे में है। यह चिंता, पूरी सृष्टि के जीवन विकास पर घात की चिंता है। जीवन विकास के इस मूल संकट का विस्तार यह है कि गत् मात्र 40 वर्षों के छोटे से कैलेण्डर में हमने प्रकृति के 52 फीसदी दोस्त खो दिए हैं। विश्व वन्य जीव संगठन के ही दूसरे आंकड़ों के अनुसार, स्थलचरों की संख्या में 39 फीसदी और मीठे पानी पर रहने वाले पशु–पक्षियों की संख्या में 76 फीसदी कमी दर्ज हुई है। उष्ण–कटिबंधीय क्षेत्रों में कई प्रजातियों की संख्या 60 फीसदी तक घट गई है। इंसान, अब इस कमी का नया शिकार है।

दुखद है कि दुनिया में 7400 लाख लोगों को वह पानी मुहैया नहीं, जिसे किसी भी मुल्क के मानक पीने योग्य मानते हैं। ऐसे में हमें ताज्जुब नहीं होना चाहिए कि दुनिया में 40 प्रतिशत मौत पानी, मिट्टी और हवा में बढ़े प्रदूषण की वजह से हो रही हैं। हमें होने वाली 80 प्रतिशत बीमारियों की मूल वजह पानी का प्रदूषण, कमी या अधिकता ही बताया गया है। पानी में क्रोमियम, फ्लोराइड, लैड, आयरन, नाईट्रेट,आर्सेनिक जैसे रसायन तथा बढ़ आए ई–कोलाई के कारण कैंसर, आंत्रशोथ, फ्लोरिसिस, पीलिया, हैजा, टाइफाइड, दिमाग, सांस व तंत्रिका तंत्र में शिथिलता जैसी कई तरह की बीमारियां सामने आ रही हैं। एक अध्ययन ने पानी के प्रदूषण व पानी की कमी को पांच वर्ष तक की उम्र के बच्चों के लिए 'नंबर वन किलर' करार दिया है। आंकड़े बताते हैं कि पांच वर्ष से कम उम्र तक के बच्चों की 3.1 प्रतिशत मौत और 3.7 प्रतिशत विकलांगता का कारण प्रदूषित पानी ही है। स्पष्ट है कि पानी का संकट बढ़ेगा, तो जीवन विकास पर संकट गहराएगा ही।

ऊर्जा विकास

सब जानते हैं कि बिन पानी न बिजली बन सकती है और न ही ईंधन व अन्य उत्पाद बनाने वाला कोई उद्योग उत्पादन कर सकता है। 'यूनियन ऑफ कन्सर्न साइंटिस्ट' की एक रिपोर्ट बताती है कि बिजली बनाने में अमेरिका प्रतिदिन इतना ताजा पानी खर्च करता है, जितना न्यूयार्क जैसे 180 शहर मिलकर एक दिन में करते हैं। यह आंकड़ा 40 बिलियन गैलन प्रतिदिन का है। अमेरिका में पानी की कुल खपत का सबसे ज्यादा, 41 प्रतिशत ऊर्जा उत्पादन में खर्च होता है। स्पष्ट है कि ऊर्जा

विकास और जल विकास, अलग न किए जा सकने वाले दो दोस्त हैं। ऊर्जा बचेगी, तो पानी बचेगा; पानी बचेगा, तो ऊर्जा बचेगी। इसके लिए बिजली के कम खपत वाले फ्रिज, बल्ब, मोटरें उपयोग करो। पेट्रोल की बजाय प्राकृतिक गैस से कार चलाओ। कोयला व तैलीय ईंधन से लेकर गैस संयंत्रों तक को ठंडा करने की ऐसी तकनीक उपयोग करो कि उसमें कम से कम पानी लगे। उन्हें हवा से ठंडा करने की तकनीक का उपयोग करो। ऊर्जा बनाने के लिए हवा, कचरा तथा सूरज का उपयोग करो। फोटोवोल्टिक तकनीक अपनाओ। पानी गर्म करने, खाना बनाने आदि में कम से कम ईंधन का उपयोग करो। उन्नत चूल्हे तथा उस ईंधन का उपयोग करो, जो बजाय किसी फैक्टरी में बनने के हमारे द्वारा हमारे आसपास तैयार व उपलब्ध हो। कुछ भी करो; बस, ईंधन और ऊर्जा बचाओ; पानी अपने आप बचेगा। ऊर्जा विकास और जल विकास का यही अंतर्संबंध है।

यह भी स्पष्ट है कि हम जितनी स्वच्छ ऊर्जा का उत्पादन करेंगे, हमारा पानी उतना स्वच्छ बचेगा। स्वच्छ ऊर्जा वह होती है, जिसके उत्पादन में कम पानी लगे तथा कार्बन–डाई–ऑक्साइड व दूसरे प्रदूषक कम निकले। चिंता यह है कि बावजूद इस स्पष्टता के हम न तो पानी के उपयोग में अनुशासन तथा पुर्नोपयोग व कचरा प्रबंधन में दक्षता ला पा रहे हैं और न ही ऊर्जा के। यह कैसे हो ?सोचें और करें।

औद्योगिक विकास : फेडरेशन ऑफ चैम्बर्स ऑफ कॉमर्स एण्ड इंडस्ट्री (फिक्की) द्वारा कराए एक औद्योगिक सर्वेक्षण में शामिल भारतीय उद्योग जगत के 14 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने माना कि उन्हें पानी के लिए काफी खर्च करना पड़ रहा है। 23 प्रतिशत ने कहा कि उनकी औद्योगिक इकाई पानी के संकट से पीड़ित है। 60 प्रतिशत ने कहा कि पानी की कमी या प्रदूषण के कारण उनके उद्योग पर नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। निवेश और औद्योगिक विकास की नई भारतीय ललक को देखते हुए अनुमान है कि वर्ष 2025 से वर्ष 2050 के बीच भारतीय औद्योगिक क्षेत्र में ताजे पानी के इस्तेमाल में 8.5 से 10.1 प्रतिशत की वृद्धि होगी।

ये आंकड़े सतर्क करते हैं कि भारत को औद्योगिक विकास और औद्योगिक क्षेत्र में निवेश से ज्यादा चिंता मौजूदा उद्योगों को पानी के संकट से उबारने के लिए करनी चाहिए। ये संकेत हैं कि फैक्टरी से निकले गंदे पानी के शोधन और फिर उसके पुर्नोपयोग के बगैर भविष्य में मशीन का चक्का आगे बढ़ेगा नहीं। यह करना ही होगा। उद्योगों को अपनी जरूरत के पानी के संचयन और सरंक्षण की जवाबदेही स्वयं उठानी होगी। नैतिक और कानूनी दोनों स्तर पर यह सुनिश्चित करना ही होगा कि जो उद्योग जितना पानी खर्च करे, वह उसी क्षेत्र में कम से कम उतने पानी के संचयन का इंतजाम करे। पानी और कचरे को लेकर उद्योगों को अपनी क्षमता और ईमानदारी व्यवहार में दिखानी होगी। किसी भी इलाके की भूजल संधारण क्षमता की सीमा रेखा जांचे बगैर उसे औद्योगिक क्षेत्र के रूप में अधिग्रहित करने का रवैया आगे बहुत महंगा पड़ने वाला है। अतः सरकार को भी चाहिए कि वह पानी–पर्यावरण की चिंता करने वाले कार्यकर्ताओं को विकास विरोधी बताने की बजाय समझे कि पानी बचेगा, तो ही उद्योग बचेंगे; वरना किया गया निवेश भी जाएगा और भारत का औद्योगिक स्वावलंबन भी। क्या भारत इसके लिए तैयार है ?

आर्थिक विकास : एक रिपोर्ट के मुताबिक वर्ष 2013 में प्राकृतिक आपदा की वजह से दुनिया ने 192 बिलियन डॉलर खो दिए। इन आपदाओं में जल आपदा का प्रतिशत सर्वाधिक है। गौरतलब है कि आर्थिक विकास के मामले में हम जिस चीनी विकास की दुहाई देते नहीं थक रहे, उसी चीन के बीजिंग, शंघाई, लांझू और ग्वांगझो जैसे नामी शहरों के बाशिंदे प्रदूषण की वजह से गंभीर बीमारियों के बड़े पैमाने पर शिकार बन रहे हैं। पानी प्रदूषण की वजह से चीन की 33 लाख हेक्टेयर भूमि खेती लायक ही नहीं बची। यह कमाना है कि गंवाना ?

अमेरिका की 'गैलप' अग्रणी सर्वे एजेंसी के मुताबिक, दुनिया के खुशहाल देशों की सूची में भारत, चीन से 19 पायदान ऊपर है। भारत के 19 फीसदी लोग अपने रोजमर्रा के काम और तरक्की से खुश हैं, तो चीन में मात्र नौ प्रतिशत। दूसरी तरफ, विकसित कहे जाने वाले कई देश स्वयं को बचाने के लिए ज्यादा कचरा फेंकने वाले उद्योगों को दूसरे ऐसे देशों में ले जा रहे हैं, जहां प्रति व्यक्ति आय कम है। क्या ये किसी अर्थव्यवस्था के ऐसा होने के संकेत हैं कि इससे प्रेरित हुआ जा सके? क्या ऐसी मलीन अर्थव्यवस्था में तब्दील हो जाने की बेसब्री उचित है ? क्या भारत को इससे बचना नहीं चाहिए ?क्या भारत को बैराज, नदी जोड़, जलमार्ग, जलविद्युत, नगर विकास, खनन, उद्योग आदि के बारे में निर्णय लेते वक्त यह विश्लेषण नहीं करना चाहिए कि इनसे किसे कितना रोजगार मिलेगा, कितना छिनेगा ? किसे कितना मुनाफा होगा और किसका, कितना मुनाफा छिन जाएगा?

नगर विकास : सब जानते हैं कि नगरों के नल संकट में हैं। बंगलुरु, मुंबई, हैदराबाद, अहमदाबाद, जयपुर, दिल्ली–गिनते जाइए कि हमारे लगभग सभी महानगर पानी के मामले में परजीवी हैं। ''जितना विकसित नगर, उतनी गंदी उसकी नदी'' – विकास का यह विरोधाभास, नदी किनारे बसे हमारे सभी शहरों पर लागू है। स्लम, सीवेज, कचरा, प्रदूषण और बीमारी – भारत ही नहीं, पूरी दुनिया में नगरीय विकास की नई और नकरात्मक पहचान बनकर उभरे हैं। बावजूद इसके चलन यह है कि हर सप्ताह करीब 10 लाख लोग अपनी जड़ों से उखड़कर शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं। अनुमान है कि वर्ष 2050 तक ढाई

बिलियन लोग शहरों में रहने लगेंगे। इसका एक कारण पानी भी है।

अर्थशास्त्री कह रहे हैं कि भारत के सकल घरेलू उत्पाद में नगरों का योगदान बढ़कर 60 प्रतिशत हो गया है। विश्व बैंक अगले दस वर्षों में नगरीय योगदान के बढ़कर 70 प्रतिशत हो जाने का आकलन पेश कर रहा है। भारत सरकार ने भी 100 स्मार्ट सिटी और औद्योगिक विकास का एजेंडा अपने हाथ में ले ही लिया है। गांवों से पलायन और शहरीकरण का सपना तथा रफ्तार बता रही है कि इस सदी का मध्य आते–आते भारत भी गांवों का देश नहीं बचेगा। ज्यादातर गांव कस्बों में और कस्बे, नगरों मे तब्दील हो जाएंगे। नगरों में भीड़, कचरा, स्लम तथा प्राकृतिक संसाधनों की मांग–आपूर्ति के मसले और बड़ी चुनौती बनकर पेश होंगे। अभी भारत में अनियोजित नगरों की संख्या 3894 है; जो आगे कई गुना अधिक हो जाएगी। इस नाते भारत के नगरों के समक्ष यह चुनौती ज्यादा होगी। फिर भी इस वैश्विक प्रभाव को कोई रोक नहीं सकता; यह साफ है। अतः सावधानी यह भी रखे कि हम अपने नगरों का विकास ऐसे करें ताकि पानी के कारण यूं उजड़ना न पड़े, जैसे कभी दिल्ली तीन बार उजड़ी। नगर बाद में बसायें, पानी और आबोहवा की शुद्धता का इंतजाम पहले करें। नगर के कौन से हिस्से में उद्योग, कौन से हिस्से में आवास आदि हो, इनके निर्धारण में अन्य कारकों के साथ–साथ जलस्रोतों की क्षमता और उपलब्धता का भी ध्यान जरूरी है। वाटर रिज़र्व', 'ग्रीन रिज़र्व' और 'वेस्ट रिज़र्व' ज़ोन का निर्धारण कर यह किया जा सकता है; आइए करें।

ग्राम विकास : स्थानीय कारीगरी, ग्रामोद्योग और साहचर्य – ये सभी गांव विकास की बुनियाद का सीमेंट–गारा हो सकते हैं, किंतु इस बुनियाद की असल ईंट तो खेती ही है। कहना न होगा कि गांव विकास की बुनियाद खेती पर टिकी है और खेती की बुनियाद, पानी पर। पानी का परिदृश्य यह है कि कभी अतिवृष्टि, कभी अनावृष्टि और कभी बेमौसम बरसात के कारण भारतीय खेती संकट के नये दौर से गुजर रही है। अभी–अभी बीते मार्च–अप्रैल में आई बेमौसम बरसात के संकट से कश्मीर और हमारी खेती दो–चार हुए ही। दूसरी तरफ हमारी नहर, कुएं, तालाब और भूजल निकासी की सारी मशीनें मिलकर भी हमें और हमारी खेती को स्वस्थ पानी पिलाने में नाकाम साबित हो रही हैं। पिछले एक दशक में कई ऐसे मौके आए, जब पिछले वर्ष की तुलना में अगले वर्ष खाद्यान्नों का तुलनात्मक उत्पादन गिरा। वर्ष 2002–03 में 28.08 प्रतिशत और 2008–09 में 33 प्रतिशत कमी हुई। वर्ष 2009–10 में तुलनात्मक गिरावट का यह आंकड़ा 26.06 प्रतिशत था। नतीजा सामने है कि भारतीय सकल घरेलू उत्पाद में खेती का योगदान घटकर 15 प्रतिशत रह गया है।

यदि खेती और खेतिहर को गांवों में टिकाए रखना है, तो सबसे पहले इस झूठ को सामने लाना होगा कि खेती घाटे का सौदा है। हिसाब लगाइए, सबसे ज्यादा खर्च सिंचाई के लिए ही करना पड़ रहा है। नहर, समर्सिबल अथवा जेट पंप इस गणित को उलट नहीं सकते। बारिश की बूंदों को सहेजकर बनाए जलसंचयन ढांचों के बूते खेती का स्वावलंबन और मुनाफा वापसी काफी कुछ संभव है। खेतिहर को मिले मूल्य और खुदरा ग्राहक द्वारा दिए मूल्य के बीच की दूरी तो घटाने के साथ–साथ अपना पानी, अपना बीज, अपनी खाद और अपने हाथों अपनी खेती के रास्ते पर चलने की जरूरत है। वरना् सच मानिए, गांवों का विकास आगे चलकर स्थानीय ग्रामीण किसान के हाथ नहीं, बल्कि वर्ग किलोमीटरों में खेती कर रही कंपनियों के हाथ होगा। स्थानीय कारीगरी, ग्रामोद्योग और साहचर्य से दूर होते टूटते–बिखरते गांवों के विकास का नया गेम प्लान यही है। बचना है तो पानी सहेजिए; खेती, खेतिहर और गांव अपने आप सहेज उठेंगे।

समग्र विकास : दुनिया के कई करोड़ लोग आज भी अपनी दिनचर्या का 15 प्रतिशत समय पानी ढोकर लाने में खर्च करने को मजबूर हैं। यह 15 प्रतिशत समय लाडली की पढ़ाई और लाडले के सानिध्य समय में कटौती की मार्मिक तकलीफ से स्वयंमेव जुड़ा है। कहना न होगा कि पानी, पढ़ाई को भी प्रभावित करता है, रोजगार को भी, संस्कार, व्यवहार और हमारी जीवनशैली को भी। समग्र विकास के ऐसे भिन्न पहलुओं पर विस्तार से चर्चा यहां संभव नहीं। फिर भी पानी के बढ़ते विवाद, पानी की बढ़ती राजनीति, पानी का बढ़ता बाजार, पानी के बढ़ते बीमार, पानी की बढ़ती प्यास और घटती उपलब्धता को देखते हुए हम यह दावे से कह सकते हैं कि पानी विकास को प्रभावित करने वाला सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व है। वर्ष 2000 की तुलना में वर्ष 2050 तक पानी की वैश्विक मांग के 400 फीसदी तक बढ़ जाने की उम्मीद है। शुद्ध मीठे जल की उपलब्धता जितनी घटती जाएगी, विकास के सभी पैमाने हासिल करने की चीख–पुकार उतनी बढ़ती जाएगी। अतः विकास चाहिए, तो बढ़ाना और बचाना तो पानी ही होगा।चाहे 'नमामि गंगे' का संकल्प सिद्ध करना हो या स्वस्थ, स्वच्छ, सक्षम और डिजीटल भारत का; स्वच्छ, निर्मल–अविरल जल के बगैर वह भी संभव नहीं। फिल्टर, आर ओ और बोतलबंद पानी के भरोसे विकास का पहिया चल नहीं सकता। प्रकृति निर्मित ढांचों और मानव निर्मित ढांचों के बीच संतुलन साधना ही इसका समाधान है। उपभोग घटाए, सदुपयोग बढ़ाए और जल संचयन भी। विकास और प्यास, आज दोनों की मांग यही है। आइए, इनकी पूर्ति में लगें।

(लेखक स्वतंत्र पत्रकार हैं।)

ई–मेलः amethiarun@gmail.com